शोध मंथन Vol. XII No.III July-Sep. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

नक्सलवाद – ऐतिहासिक विवेचन

प्राप्तिः 18.08.2021
स्वीकृतः 31.08.2021

डॉ० संजय कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा अध्ययन विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ
ईमेलः *aridsssanjay@gmail.com*

डॉ० नीलम कुमारी
एसोसिएट प्रोफेसर, रसायन विभाग
मेरठ कॉलिज, मेरठ
ईमेलः *aridssmeerut2011@gmail.com*

सारांश

देश अंग्रेजी आकाओं से आजाद हुआ। बेशक औपनिवेशिक मालिक चले तो गए, लेकिन भारत के गरीब तबके के लिए आजादी का स्वरुप छलावा बना रहा। भारत के आजादी प्राप्त करने के पूर्व लगभग डेढ़ सौ वर्शों तक विभिन्न जनजातीय समूहों एवं किसानों ने शोषण वश विद्रोह का सहारा लिया। जिस क्रम में बंगाल के किसानों ने 1946 के दौरान 'तेभागा आन्दोलन' चलाया, इनकी माँग थी कि तैयार फसल में जमीदारों का हिस्सा कम करके (जो कि कुल फसल का आधा होता था) एक तिहाई कर दिया जाए। आन्दोलन के दौरान अनेक हिंसक वारदातें हुईं और जमीदारों के अत्याचार के विरोध में अनाज के गोदामों को लूट लिया गया। प्रतिक्रान्ति स्वरुप यह आन्दोलन शीघ्र ही समाप्त हो गया। इसी आन्दोलन के दौरान दमनात्मक दंश झेलने वालों में उग्र विद्रोही रुख अपनाने वाले पार्टी के कामरेड चारु मजूमदार का नाम प्रमुख रुप से शामिल था।

इस आन्दोलन का विस्तार भारत के असम, मणिपुर, त्रिपुरा तथा तेलंगाना के लगभग पाँच जिलों में अपनी जड़ें जमा चुका था। इस दौरान जनता जमींदारों तथा निजाम के भ्रष्ट राजस्व कर्मचारियों का विरोध कर रही थी। कम्युनिस्ट निजाम के कार्यों से पूर्णतः असन्तुष्ट रही और अपनी दूसरी कांग्रेस की बैठक के दौरान इन्होंने निजाम के विरोध में सशस्त्र क्रान्ति का समर्थन किया। परिवर्तित अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में चीन में कम्युनिस्टों का कब्जा हो गया, जिसका भारत के वामपंथियों पर व्यापक असर हुआ। पुलिसिया कार्यवाही में निजाम के मंसूबे ध्वस्त हो गए, इनके ज्यादातर हथियार कम्युनिस्टों के पास पहुँच गए। कम्युनिस्टों के प्रभाव का विस्तार हुआ, लेकिन कुछ समय पश्चात इनके विरुद्ध भी कार्यवाही की गई। कुछ को गिरफ्तार तो कुछ को जान से मार दिया गया। जो बचे वनों और पहाड़ों पर चले गये, जहाँ उन्होंने जनजातियों के मध्य अपने प्रभावों की छाप छोड़ी। कुछ ने व्यक्तिगत तौर पर आतंकवादी रास्तों को चुना और शेष कुछ नेता और कार्यकर्ता आस–पास के इलाकों जैसे आन्ध्र के उत्तरी तट, महाराष्ट्र और मध्य प्रान्त (बस्तर) पहुँच गए। सम्प्रति सुरक्षित पनाहगाह पाने के लिए कम्युनिस्टों ने अलग–अलग रास्तों का चयन किया।[1]

कालान्तर में चले तेलंगाना आन्दोलन को सोवियत संघ और चीन ने अपना समर्थन दिया।[2] इसी आन्दोलन के परिणाम स्वरुप आचार्य विनोबा भावे ने भूदान आन्दोलन चलाया, जिसके अन्तर्गत जमींदारों को अपनी जमीन गरीब किसानों और खेत जोतने वालों के नाम करने की वकालत की गई।[3] समयान्तराल आन्दोलन के स्वरुप एवं प्रभाव में परिवर्तन दिखाई देने लगा, तत्पश्चात 1960

और 1970 के दशक में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में 'ग्रामदान' की परम्परा की शुरुआत हुई। देखा गया कि किसानों को भूदान का लाभ जैसा मिलना चाहिए था, वैसा नहीं मिला, क्योंकि दान की गई भूमि बंजर थी और उस पर किसी प्रकार की कृषि उपज सम्भव नहीं थी। 'भूदान' और 'ग्रामदान' जैसी व्यवस्था उच्च आदर्श से प्रेरित थी और सफल भी हो सकती थी, बशर्ते उसे शीघ्र समाप्त न किया जाता तो, लेकिन इसे भुला दिया गया। परिणामतः व्यवस्थापरक दोनों ही आन्दोलनों का परिणाम सकारात्मक नहीं रहा।[4]

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरु का कहना था कि 'जमीदारों का जब तक भूमि पर कब्जा रहेगा, तब तक देश का कल्याण नहीं हो सकता।' इसीलिए इन्होंने प्रथम पंचवर्शीय योजना के माध्यम से उक्त दिशा में प्रयास करना प्रारम्भ कर दिया था। जमीन जोतने वाले को उसका स्वामित्व देने के प्रति अपनी पुरानी प्रतिबद्धता के चलते कांग्रेस ने जमींदार तथा बिचौलियों से जुड़ी अन्य सभी व्यवस्थाओं को समाप्त कर दिया, साथ ही कृषि–सुधार व भूमि के स्वामित्व सम्बन्धी कानूनी प्रावधानों को पारित किया, जिसमें जमीनों के स्वामित्व की अधिकतम सीमा तय की गई। सरकारी तौर पर अपनाई गई भूमि सुधार की उक्त योजनाओं ने जमीदारों और सामन्तों को अप्रसन्न कर दिया। परिणामतः देखने में आया कि जमींदारी खत्म करने की जल्दी में सरकार ने नई राजस्व व्यवस्था को लागू नहीं किया, जिससे समस्या और जटिल हो गई। भूमि सम्बन्धी राजस्व रिकार्डों में कमी के चलते सरकार भूमिहीन किसानों को भूमि का मालिकाना हक देने के वायदे को ठोस हकीकत में नहीं बदल पाई। जम्मू व कश्मीर में बड़े भू–स्वामियों के स्वामित्व को समाप्त करने सम्बन्धी अधिनियम को पारित कर इसे 1951–52 में बिना किसी लाग–लपेट के लागू कर दिया। इस अवधि में भूमि सुधार सम्बन्धी अभियान को समूचे देश में लागू कर दिया गया। पश्चिम बंगाल के 'इस्टेट्स एक्वीजिशन ऐक्ट 1953' ने भू–स्वामित्व की विभिन्न सीमाएँ तय कर दीं। 'कृशि भूमि के लिए 25 एकड़, गैर कृशि भूमि के लिए 15 एकड़ एवम् कर्ज के एवज में जिस जमीन को बेचने की अनुमति नहीं होती है, ऐसी 'होम स्टेट' श्रेणी की जमीन की सीमा 5 एकड़ तय कर दी गई।[5]

भू–स्वामित्व की समय सीमा तय होने के दो वर्श बाद 'एनफोर्समेंट ऑफ द लैण्ड रिफार्मस् एक्ट' के द्वारा संकेत मिला कि 'संघर्श के दौरान जोतदारों को बाँटी गई भूमि से जबरन हटाया जा रहा है अथवा उससे बेनामी सौदे किए जा रहे हैं। सरकार द्वारा किए जा रहे भू–सुधार योजनाओं से असन्तुश्ट किसानों ने एकजुट होकर अखिल किसान सभा का निर्माण किया, जिसने सरकार के खिलाफ सन 1959 में भीशण आन्दोलन किया।[6] इस दौरान चीन और सोवियत विचारधारा को लेकर कम्युनिस्टों में टकराव बढ़ता दिखाई पड़ने लगा था।[7] केरल में पहली निर्वाचित कम्युनिस्ट सरकार का 1959 में हटना, 1962 का भारत–चीन युद्ध, 1963 के बाद चीन की पाकिस्तान के साथ गहराती सामरिक भागीदारी, भारत की सोवियत संघ से बढ़ती नजदीकियाँ, चीन की सांस्कषतिक क्रान्ति, नेहरु की मष्त्यु, वियतनाम की घटनाएँ और 1967 में कई प्रान्तों में संविद सरकारों के गठन के साथ कांग्रेस के प्रभुत्व को चुनौती ने वामपंथियों की उदघोशणाओं को और तेज कर दिया तथा आने वाली घटनाओं के लिए मंच तैयार कर दिया। अन्ततः एक के बाद एक घटनाओं ने लोगों को झकझोर कर रख दिया।[8] साठ के दशक के मध्य भारत के पूर्वी ग्रामीण क्षेत्रों में भीशण सूखा पड़ा। इस दौरान भारत को खाद्यान्न के लिए अमरीका पर निर्भर होना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि नीतियों का पूरा ध्यान कृषि सुधार से हटकर हरित क्रान्ति के लिए नई प्रौद्योगिकी के विकास पर केन्द्रित हो गया।[9]

गष्ह मंत्रालय में नवस्थापित भविष्योन्मुखी योजनाओं से सम्बन्धित 'पर्सपेक्टिव प्लानिंग डिवीजन' ने एक दस्तावेज तैयार किया, जिसमें कहा गया था कि अगर अर्थपूर्ण कृषि सुधार नहीं किए गए तो 'हरित क्रान्ति' 'लाल क्रान्ति' में बदल सकती है। इतना कुछ होने और चेतावनी के बावजूद सरकार ने समस्या को गम्भीरता से नहीं लिया।[10]

नक्सलवाद पनपने का एक प्रमुख कारण समाज में व्याप्त वर्गभेद के साथ गरीबी एवं बेरोजगारी भी है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भूमि सुधार कार्यक्रमों पर ईमानदारी और तेजी के साथ अमल हो, क्योंकि गरीब और बेरोजगार नवयुवकों अतिवादी गुट बेहद आसानी से गुमराह करते हैं और उन्हें सिखाते हैं कि प्रशासन पुलिस व समाज के समष्द्ध लोगों को अपना दुश्मन समझें। अराजकतावादी तत्व बेरोजगार युवकों को गुमराह कर मनचाही हिंसा एवं आतंक की ओर प्रेरित करते हैं। स्वाधीनता के पश्चात एक बड़े पैमाने पर नक्सलवाद के अपने आन्दोलन के प्रभाव क्षेत्र में छात्रों एवं नौजवानों को गोलबन्द किया है। आखिर इन नवयुवकों ने अपनी आरामदेह जिन्दगी को त्यागकर आत्मत्याग का रास्ता क्यों अपनाया?[11] जिन मुद्दों पर नक्सल आन्दोलन आरम्भ हुआ था, वे मुद्दे यानि जमीन के अधिकार, भूख का मर्म व दर्द आज भी जिन्दा है। दूसरे शब्दों में नक्सलवाद आज इस कारण जिन्दा है, क्योंकि हमारे समाज में असन्तोश व विक्षोभ के कारण बाकायदा बने हुए हैं।[12] अपमान एवं असन्तोश की परिणति है– नक्सलवाद। हमारी गलत आर्थिक–सामाजिक नीतियों एवं विसंगतियों की उपज है– नक्सलवाद।[13] आज नक्सली जिस भी धारा में बह रहे हों, लेकिन शुरुआत में हमारे ही शोशण, दुःख–दर्द के मारे रहे हैं– नक्सली।

नक्सलवाद – उत्पत्ति एवं विस्तारः–

नक्सलवाद (Naxalism) शब्द पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी सम्भाग के दार्जिलिंग जिले के एक छोटे से गाँव नक्सलवाड़ी से उदित हुआ।[14] नक्सलवाड़ी का इलाका तीन पुलिस थानों के अध ीन था– नक्सलवाड़ी, खारीबाड़ी और फांसीदेवा। नक्सलवाड़ी का क्षेत्र नेपाल और पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) से सटा हुआ था और यहाँ की आबादी में ज्यादातर आदिवासी थे, जो संथाल, ओरांव, मुंडा और राजवंशी समुदाय से आते थे। इनमें से अधिकांश भूमिहीन मजदूर थे, जो जमींदारों के स्वामित्व वाली जमीन पर ठेके का काम करते थे। यह कोई शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व नहीं था। जमींदार इसके एवज में फसल का बहुत बड़ा हिस्सा खुद लेता। इन खेतों में जानवरों की तरह खटने वाले इन आदिवासियों को इतना भी नहीं मिलता कि वे दो जून की रोटी खा सकें। फसल के बंटवारे को लेकर आए दिन विवाद होते रहते थे।[15] सम्प्रति अपनी सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के कारण उत्पन्न असन्तोश के रुप में नक्सलवाड़ी से 1967 में शुरु हुए किसान आन्दोलन को नक्सली आन्दोलन कहा गया। इस समय सर्वहारा की क्रान्ति और सर्वहारा का नारा लगाने वाले नक्सली आन्दोलन के तीन घोशित उद्देश्य थे[16]–

1 खेत जोतने वाले को खेत का हक मिले।

2 विदेशी पूँजी की ताकत समाप्त की जाए।

3 वर्ग एवं जाति के विरुद्ध संघर्श हो।

बगावत की शुरुआत 2 मार्च, 1967 को नक्सलवाड़ी गाँव से होती है, जहाँ स्थानीय जमींदार के सशस्त्र गुंडों ने एक आदिवासी जनजाति के युवक विगुल नामक किसान को जमीन जोतने का कानूनी अधिकार होने के बावजूद उसकी बेरहमी से पिटाई करते हैं। इसके दूसरे दिन किसान

आन्दोलनकारियों ने जमीन के एक बड़े भूखण्ड को लाल झण्डों से घेरकर खुदाई शुरु कर दी। पुलिस ने दमन शुरु कर दिया और लोगों में गुस्सा बढ़ता गया। 25 मई को किसानों ने एक इंस्पेक्टर की हत्या कर दी। बदले में पुलिस ने 9 औरतों और एक बच्चे को मार डाला। जमींदारों की गर्दनें काटकर पेड़ों से लटकाने की खबरें आने लगीं। विद्रोहियों ने सरकारी दफ्तरों में रखे जमीन के कागजात फूँक दिये। जमींदारों द्वारा सताए गए भूमिहीन और जातिप्रथा के शिकार लोग आन्दोलन में कूद पड़े। इस आन्दोलन में चारु मजूमदार ने प्रमुख रुप से अपना नेतृत्व प्रदान कियज्ञं[17] चारु मजूमदार चीन के नेता माओत्से तुंग के कट्टर समर्थक थे और भारतीय किसानों तथा दबे–कुचले वर्गों के लोगों को उनके पद चिन्हों पर चलने को प्रेरित करते थे। उनका कहना था कि क्रान्ति के माध्यम से सरकारों और उच्च वर्गों का तख्ता पलट दो जिनके कारण उनकी दुर्गति हुई है। उन्होंने 'ऐतिहासिक आठ दस्तावेज' लिखे जो नक्सलवाद के मूल सिद्धान्त बन गये। इस आन्दोलन के दौरान चारु मजूमदार और कानू सान्याल भूमिगत हो गये और जंगल में बड़ी संख्या में सन्थाल पकड़े गये। इस प्रकार एक खूनी संघर्श की शुरुआत हो गई, जो आज भी जारी है।[18] वास्तव में नक्सलवाद के अनुयाईयों में गरीब, दलित, शोशित, आदिवासी, मजदूर व किसान प्रमुख रुप से शामिल हैं, इसके साथ ही एक बड़ी मात्रा में अब बुद्धिजीवी वर्ग (माओइस्ट विचारधारा) भी इनके हक की लड़ाई में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रुप से सहयोग दे रहा है।[19]

माओवाद और नक्सलवादः–

माओवाद या नक्सलवाद एक ही बात है। भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में रूस–चीन विभेद के बाद यह नाम कट्टर, प्रायः हिंसक क्रांतिकारी कम्युनिस्ट गुटों को दिया गया। वैचारिक रूप से ये सभी गुट माओवाद से प्रभावित हैं। आरम्भ में इस आन्दोलन का केन्द्र पश्चिम बंगाल था। हाल के वर्शों में माओवादियों ने झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और आन्ध्र प्रदेश में अपने प्रमुख ठिकाने बनाए हैं, जहाँ ये विभिन्न भूमिगत गुटों के रूप में सक्रिय हैं। सरकार इन्हें आतंकवादी कहती है। माओवाद दरअसल मार्क्सवाद के इतिहास में पूरी तरह से एक नया स्तर है, उन्नतर और गुणगत विकासमान स्तर। माओवाद चीनी क्रांति की वास्तविकता के साथ मार्क्सवाद–लेनिनवाद की विश्वजनित मूल नीतियों के एकीकरण का फल है। भारत के माओवादी मानते हैं कि चीन की सरकार हो या भारत की या पश्चिम बंगाल की, वे सभी साम्राज्यवाद की गुलाम है यानि साम्राज्यवाद ही भारत का नियन्त्रक है और देश के नेता साम्राज्यवादी नियन्त्रण के अन्यतम हथियार हैं और विकास के लिये पूरी तरह साम्राज्यवाद पर निर्भर हैं।[20] स्वतन्त्रता के समय से ही ये बड़े बुर्जुआ दूसरों के लिए काम करते रहे हैं। वे साम्राज्यवाद की दलाली करते रहे हैं। भारत के गाँवों में बड़े भू–स्वामियों, जमींदारों का राज है और उनके साथ देशी दलाल बुर्जुआ वर्ग का समझौता है।[21]

राष्ट्रीय समस्या के रुप में नक्सलवादः–

नक्सली हिंसा का सीधा सम्बन्ध उन इलाकों या समुदायों के विकास से है जो आजादी के छः दशक बाद भी हाशिये पर पड़े हैं तथा जिन्हें जीवन की मूलभूत सुविधाएँ भी आसानी से उपलब्ध नहीं हैं। यह समस्या आन्तरिक सुरक्षा के खतरे के साथ–साथ विकास के लिए भी बड़ी चुनौती है। विकास नहीं तो नक्सली और नक्सली नहीं तो विकास के इस चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए बैठकों और फाइलों से आगे एक वैकल्पिक रणनीति तक जाने की जरुरत है।[22] नक्सलवाद का प्रसार जिन इलाकों में हुआ है, उन पर भी गौर करना बहुत जरुरी है, क्योंकि ये मुल्क के सर्वाधिक पिछड़े इलाके

हैं। इन इलाकों में रहने वाले दलित–आदिवासी तबके के लोगों के बीच नक्सलवाद फल–फूल रहा है। यह भी कहने की जरुरत नहीं है कि आज भी इन लोगों का शोशण कई स्तरों पर हो रहा है। अतः नक्सलवाद की समस्या पर विचार करने वाले लोगों को इन पिछड़े इलाकों में रहने वाले लोगों की भौतिक परिस्थितियों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इनके जीवन से जुड़ी भौतिक स्थितियाँ ही नक्सलवाद के प्रसार के लिए जमीन तैयार करती हैं। इन इलाकों में जीवन की बुनियादी जरुरतें भी ठीक से उपलब्ध नहीं हैं। ऊपर से कई तरह के शोशण चक्र का पेचीदा शिकंजा भी बरकरार है। इन इलाकों में रहने वाले लोगों की जीविका का साधन जल, जंगल और जमीन है। हर नए कानून के अनुसार स्थानीय जल, जंगल और जमीन पर इनका पुश्तैनी अधिकार चलता आ रहा था। एकायक बेदखल होकर जीवन जीने का कोई दूसरा साधन इन्हें नहीं दिखता।[23]

जल, जंगल और जमीन पर सबका अधिकार है, तो किसी के साथ दखलंदाजी क्यों? हमने 'जनता का शासन' सिद्धान्त को लोकतन्त्र की परिभाशा में शामिल किया है तो हमारे शासन को 'जनपरक' एवं संवेदनशील बनना होगा। यह सत्य है कि हमारे देश के अनेक क्षेत्रों में विकास हुआ साथ ही कुल सकल उत्पाद (जीडीपी) भी बढ़ा, किन्तु विकास का लाभ समाज के प्रत्येक वर्गों को सकारात्मक रुप से आवश्यकतानुसार नहीं प्राप्त हो पाया। इसप्रकार यह कटु सत्य है कि जनजातियों के साथ समानता का व्यवहार तो दूर सौतेला व्यवहार हुआ है।[24] एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में स्थापित विभिन्न परियोजनाओं के कारण 6 (छः) करोड़ से अधिक लोगों को विस्थापन की स्थिति को झेलना पड़ा है, जिनमें लगभग पचास प्रतिशत लोग जनजातियों के रहे हैं।[25] स्पश्ट ही नहीं बिल्कुल सत्य है कि नक्सलवाद की जड़ें उसी क्षेत्र में ज्यादा गहरी हुई हैं, जहाँ विकास कार्य सरकारी स्तर पर दुर्भावनापूर्ण रहे एवं उसका उचित लाभ अपेक्षित लोगों को नहीं मिल पाया है और जिस कारण वहाँ की जनता उपेक्षा से त्रस्त है। वास्तव में रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरुरतों के साथ अपनेपन एवं सामाजिक समरसता के अभाव की समस्या जब तक समाज में रहेगी तब तक नक्सली समस्या का सही रुप में समाधान सम्भव नहीं है। इसप्रकार नक्सलवाद वहीं पनपता दिखा जहाँ सामाजिक मतभेद विद्यमान रहे हैं।[26] रही बात संसाधनों की तो इसकी भी कमी देश में नहीं है, परन्तु इसका कुप्रबन्धन ही समस्या का प्रमुख कारण है। नतीजतन हमारे देश की ग्रामीण गरीब भुक्खड़ जनता लगातार शहरों की ओर पलायन करने को विवश हो रही है। अतः नक्सलवाद पनपने का एक प्रमुख कारण समाज में व्याप्त वर्गभेद के साथ शोशण, गरीबी एवं बेरोजगारी भी है।[27] सम्प्रति निश्कर्शतः कहा जा सकता है कि नक्सलवाद को एक व्यापक सामाजिक एवं आर्थिक समस्या के रुप में समझना नितान्त आवश्यक है। जमींदारी प्रथा को हमारी राज्य सरकारों ने समाप्त तो कर दिया और भूमि पुनर्वितरण सम्बन्धी अनेक नियम–कानूनों को भी बनाया, बावजूद इसके इसे लागू करने में बहुत सी अनियमिततायें सामने आईं। देखा यह गया कि अनेक क्षेत्रों में बाहुबली भू–स्वामियों द्वारा गरीब एवं भूमिहीन लोगों को मिली हुई जमीनों पर भी खेती करने से जबरन रोका गया।[28]

गाँव समाज से जुड़ा आम आदमी इसे बखूबी देख सकता है कि स्वाधीनता के छः दशक बाद आज भी बड़े भू–स्वामियों और जमींदारों की सामंती सोच और मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है। इसलिए नक्सली नेताओं का कहना है कि वर्तमान शासन–व्यवस्था धूर्त नौकरशाहों, भू–स्वामियों, पूँजीपतियों और तथाकथित दलालों के हाथ में हैं, जो विशाल समूह वाले मजदूर, दलित व किसानों पर अपनी जोर जबरदस्ती का प्रताड़नापूर्ण शासन कर रहे हैं। अपनी जड़, जमीन और

जमीर की सुरक्षा के लिए आज नक्सलियों ने एक ऐसे वर्ग समाज की स्थापना करने की ठानी है जिसमें दलित, शोशित, अन्य पिछड़े तथा मजदूरों एवं किसानों का प्रभुत्व हो।[29] इसप्रकार इनकी एक विचारधारा है और जिससे प्रेरित कार्यकर्ताओं एवं इनके समर्थकों का एक समूह है। समूह की एक संगठनात्मक वैकल्पिक राजनीतिक सोच भी है, जिसे अपेक्षित कार्यरुप प्रदान करने के लिए आवश्यक सुविधा के रुप में स्वयं का और पड़ोसी देशों से प्राप्त आधुनिक हथियारों का भण्डार भी है।[30] यह बात विशेश रुप से उल्लेखनीय है कि नक्सलवाद उग्र विचारधारात्मक पृश्ठभूमि पर भले ही आधारित है, फिर भी मूलतः अलगाववाद अथवा आतंकवाद से बिल्कुल पृथक है, सिर्फ नक्सलियों के कृत्य अमानवीय होने के साथ आतंकवादियों के हिंसात्मक कृत्यों के सदृश हैं। अतः नक्सलियों का उद्देश्य भले ही अच्छा कहा जाए परन्तु इनकी कार्य पद्धति बिल्कुल ही गलत है, क्योंकि इनके पास आन्दोलन में हिंसा का समावेश हो गया है। नक्सलियों के मकसद को देखते हुए हिंसा किसी हद तक भले ही कामयाब होती दिख जाए, लेकिन इस कार्य से राज्य व्यवस्था बदल पाना सम्भव नहीं होगा।[31]

नक्सलवादियों के अक्सर होने वाले हमले की बावत सरकार एवं आज जनता की चिन्ता स्वाभाविक है। जब भी नक्सली हमला होता है, इस पर गम्भीर रुप से चिन्ता प्रगट की जाती है साथ ही उसे रोकने के लिए तरह–तरह के सुझाव भी दिये जाते हैं। नक्सलवाद के बारे में होने वाले विचार–विमर्श में मुख्यतया इस बात पर जोर दिया जाता है कि नक्सली हमले से कैसे निपटा जाये। इससे निपटने वाले सुझाव का महत्व है, लेकिन इसकी गम्भीर सीमाएं भी हैं। ये हमारे सुझाव नक्सली हमले को एक समस्या मानकर दिये जाते हैं। कहने का आशय यह है कि यहाँ नक्सलवाद को सिर्फ एक समस्या के रुप में देखकर उसका हल खोजने का प्रयत्न किया जाता है। नतीजतन नक्सली हमले का मूल आधार इस मुद्दे पर होने वाले विचार–विमर्श में नजरअंदाज हो जाता है। नक्सलवाद की समस्या किन समस्याओं की उपज है, इस पर गौर नहीं किया जाता है। आखिर नक्सलवाद दिनों दिन क्यों बढ़ता जा रहा है? आज का नक्सलवाद कहाँ से ऊर्जा प्राप्त करता है इन सवालों पर बगैर गम्भीरतापूर्वक सोचे नक्सलवाद की चुनौती से निपटा नहीं जा सकता।[32] कुछ विशेशज्ञ नक्सली समस्या को कानून और व्यवस्था की समस्या न मानकर इसे सामाजिक–आर्थिक समस्या का नाम देकर इससे निपटने के लिए राजनीतिक तन्त्र को आगे आने की सलाह देते हैं, मगर जो संगठन हिंसा के लिए हिंसा करने में यकीन करता हो, उससे निपट पाना राजनीतिक तन्त्र के बूते की बात नहीं है।[33] देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए गम्भीर खतरा बनती जा रही नक्सली समसया से तो कानून–व्यवस्था की समस्या की तरह ही निपटना होगा। इसके लिए जरुरी है कि नक्सली वारदात हो जाने के बाद क्षणिक उत्साह दिखाने की बजाय सभी प्रभावित राज्य तक समेकित रणनीति बनाकर तब तक मुहिम चलाएँ जब तक कि इस समस्या पर पूरी तरह काबू नहीं पा लिया जाता।[34]

नक्सलवाद का विस्तारः–

नक्सलवादी आन्दोलन का आरम्भ पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी के एक संभाग से हुआ, जिसमें नक्सलवाड़ी, पंसीदेवा व खरीबाड़ी जैसे तीन उपक्षेत्र थे। इसी नक्सलवाड़ी क्षेत्र के कारण ही इसका नाम नक्सलवाद पड़ा। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी भारत में 1964 में अस्तित्व में आई। कम्युनिस्ट क्रान्ति के जुनून एवं सी.पी.एम. के सदस्य बने कम्युनिस्टों का मोहभंग उस समय हुआ, जब नक्सलवाड़ी गाँव में भू–स्वामियों के विरुद्ध भूमिहीन किसान व बेरोजगार युवकों ने अपना संघर्श अभियान आरम्भ किया। इस संघर्श को सी.पी.एम. सदस्य एवं जिला स्तरीय नेता चारू मजूमदार व

कान्यू सान्याल ने नेतष्त्व प्रदान किया। वास्तव में नक्सलवादी विचार को सैद्धान्तिक समर्थन अप्रैल 1969 में मिला, जब चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांग्रेस सम्पन्न हुई, जबकि माओ के विचारों को मार्क्सिज्म–लेनिनिज्म की चरम सीमा कहा जाता था। इन्हीं विचारों का उपयोग करते हुए नक्सलवादी नेता चारू मजूमदार ने घोशणा की थी कि 'चीन का चेयरमैन हमारा चेयरमैन है।' बंगाल से नक्सलवादी आन्दोलन भूमिहीन श्रमिकों की ओर से संघर्श करने बिहार में फैला।[35]

स्वाधीन भारत के इतिहास में नक्सलबाड़ी का आन्दोलन मात्र एक किसान एवं भूमिहीन वर्ग की जागषति का ही एक आन्दोलन नहीं था, बल्कि भारतीय समाज के क्रान्तिकारी परिवर्तन हेतु कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों ने चीन में सम्पन्न हुई कम्युनिस्ट क्रान्ति से सबक सीखते हुए लेनिनवाद, मार्क्सवाद और माओत्से तुंग विचारधारा को अपना प्रस्थान बिन्दु माना। सामन्तवाद को समाप्त करने हेतु साम्यवाद का यह संघर्श उस समय उग्र हुआ, जब भूमिहीन किसान एवं उपेक्षित सामाजिक वर्ग ने इसका दामन थाम लिया। भारी भूल, भटकाव, भय, भागमभाग एवं भड़ास से भरे असंतुलित तथा राज्य प्रशासन द्वारा अभूतपूर्व दमन, दबाव एवं उत्पीड़न के बावजूद नक्सलवादी गतिविधियों का सिलसिला जारी रहा। अपनी अनेक भूलों के कारण नक्सलवाद अपने मूल स्थान पश्चिम बंगाल में तो पनप नहीं सका, किन्तु जहाँ नक्सलवादियों के छिपने एवं कूटयोजना बनाने हेतु जंगल एवं घाटी क्षेत्र विशेश रूप से उपलब्ध हैं, वहाँ अधिक पनपा और आज भी इसका आतंक कुछ क्षेत्रों में फैला हुआ है, जैसे– आन्ध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, तमिलनाडु, महाराश्ट्र एवं उड़ीसा आदि।[36] नक्सलवादी संगठनों के पास कुशल सूचना तन्त्र, विशेश प्रशिक्षण एवं अत्याधुनिक शस्त्र–प्रणाली भी है। आन्ध्र प्रदेश में रॉकेट लांचर एवं विस्फोटक बरामद होने के बाद नक्सलवादियों द्वारा हथियारों की अंतर्राज्यीय आपूर्ति की नयी प्रवषत्ति से सुरक्षा संकट बढ़ता जा रहा है।[37]

नक्सलवादी नाम से आमतौर पर प्रचलित कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की इस धारा में स्पश्ट तौर पर दो प्रवषत्तियों के बीच वर्तमान में यह विभाजित है। एक विशेश रूप से आन्ध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराश्ट्र, बिहार एवं उड़ीसा के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में सक्रिय 'पीपुल्स वार ग्रुप' जो एक नक्सलवाद की अराजकतावादी धारा है। दूसरी प्रवषत्ति जो संसदीय व गैर संसदीय संघर्श को अपना प्रस्थान बिन्दु मानती हैं, उसे भारत की कम्युनिस्ट पार्टी लिबरेशन यानि भाकपा (माले) लिबरेशन कहा जाता है। आन्ध्रप्रदेश के नक्सली नेता कोंडापल्ली सीता रमैया ने तमिलनाडु के नक्सली नेता कोदंडरामन के साथ मिलकर 'पीपुल्स वार ग्रुप' का गठन किया। ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी विचारधारा से जोड़ने व ग्रुप को सशक्त बनाने के एि पीपुल्स वार ने 'रैयत कुली संघम' स्थापित किया, जबकि शहरों में सक्रियता बनाए रखने हेतु उन्होंने 'रेडिकल स्टूडेण्ट यूनियन' तथा 'रेडिकल यूथ लीग संगठन' तैनात किए। इसके साथ ही नागरिक अधिकार संगठन आन्ध्र प्रदेश 'सिविल लिबर्टी कमेटी' में उसने अपना शक्तिशाली आधार स्थापित कर लिया। सांस्कषतिक क्षेत्र में इस संगठन ने विप्लवी रचयिता संघम और जन नाट्य मण्डली का गठन करके लोकप्रियता की एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। इसके फलस्वरूप मध्यवर्गीय युवक एवं गरीब व उपेक्षित वर्ग विशेश रूप से इससे आकर्शित होने लगा और आन्ध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र से लेकर महाराश्ट्र के गढ़चिरोली और चन्द्रपुर तक अपना विस्तार कर लिया। मध्यप्रदेश के बस्तर जिले में भी इसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होने लगा। बिहार में विशेश रूप से सक्रिय पार्टी 'यूनिटी ग्रुप' का इस संगठन में विलय हो गया। पीपुल्स वार ग्रुप की तरह बिहार का एक नक्सलवादी गुट (माओवादी कम्युनिस्ट केन्द्र) एम.सी.सी. भी इस समय खास तौर से

सक्रिय है।[38] इन्स्टीट्यूट ऑफ कान्फ्लिक्ट मैनेजमेण्ट के अनुसार 2003 में 9 राज्यों के 55 जिले नक्सली समस्या से ग्रस्त थे। वर्श 2008 में 20 राज्यों के 223 जिले इसकी चपेट में आ गए हैं। 12 राज्यों के 55 जिलों में तो नक्सलियों की समानान्तर सरकार चल रही है। पूरे देश के लगभग 40 प्रतिशत भाग में नक्सली गतिविधियाँ प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में जारी हैं।[39]

यह भी उल्लेखनीय है कि नक्सली माफिया गिरोह की भांति सिर्फ अपराध के लिए और अपराध के सहारे जीवित रहने वाले अपराधी नहीं हैं। इनकी एक विचारधारात्मक पष्ठभूमि है और वे प्रायः किसी गैर अपराधिक संयुक्त लक्ष्य प्राप्ति हेतु ऐसे काम को अंजाम देते हैं। यह दूसरी बात है कि समय के साथ सोच–विचार और संयुक्त लक्ष्य जैसी बातें महत्त्वहीन हो गई हैं और इन नक्सलवादी गुटों के लिए हिंसा, आतंक, निजी वर्चस्व एवं प्रतिशोधात्मक कार्यवाहियाँ ही प्रमुख हो गई हैं। कुछ नक्सलवादी संगठन तो पूरी तरह से ही माफिया गिरोहों में तब्दील हो गए हैं, जिनका काम आतंक फैलाकर रकम वसूल करना रह गया है। इन संगठनों का सहारा लेकर बहुत से अपराधी इसमें घुस गए हैं, इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता। जिनका एकमात्र उद्देश्य अराजकता पैदा करके धन कमाना होता है। अतः सामाजिक व आर्थिक स्थिति के साथ सुरक्षा कार्यक्रम संतुलित रूप से चलाकर नक्सलवाद पर नकेल डाली जा सकेगी। किन्तु 'कोबरा' अपना नक्सल विरोधी विशदंश इस्तेमाल करता इसके पूर्व ही उसे भ्रश्टाचार के काले नाग ने डस लिया।[40]

आन्तरिक सुरक्षा – समस्याएँ एवं चुनौतियाँः–

भारत में सशस्त्र नक्सलवाद अपने तीसरे चरण में पहुंच चुका है। बीते दो चरणों के मुकाबले यह विद्रोह ज्यादा नुकसानदेह, घातक और विस्फोटक है। नक्सलवाद अपने पहले चरण में बुनियाद मजबूत कर रहा था। उस वक्त जमींदार और पूंजीपति निशाना बनते थे। यह वह दौर रहा, जब समाज का एक तबका नक्सलवाद को व्यवस्था के विद्रोह में एक बुद्धिजीवी आन्दोलन के तौर पर मानता था। कहीं यह अपने सशस्त्र विद्रोह के रूप में था, तो कहीं वैचारिक विद्रोह के तौर पर। पश्चिम बंगाल में तो इस आन्दोलन को व्यापक स्थान और समर्थन प्राप्त हुआ था। कुछ वाम पार्टियां नक्सली विचारधारा के करीब होती थीं। नक्सलवाद का दूसरा चरण पहले की अपेक्षा अधिक विध वंसक इसलिए हुआ क्योंकि इसमें सीधे–सीधे व्यवस्था पर हमले शुरू हुए। चूँकि व्यवस्था की तरफ से भी जवाबी कार्रवाइयां होने लगीं, इसलिए इसके परिणाम ज्यादा खून–खराबे वाले रहे।

दूसरे चरण में नक्सलियों ने सशस्त्र बलों पर हमले शुरू किए। गौरतलब है कि इस दौर में नक्सल विद्रोह का सीमा–विस्तार सबसे अधिक हुआ। यह देखा गया कि पूरे भारत में एक लाल गलियारे का निर्माण होने लगा, जो पश्चिम बंगाल से फैलकर बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराश्ट्र तक पहुंच गया। इसे यों भी समझें कि जो क्षेत्र भयंकर निरक्षरता, गरीबी और तंगहाली तथा विशमता से घिरे हुए थे, वहाँ नक्सलवाद की जड़ें गहरी हुईं। इस दौर में नक्सलवाद को आदिवासी समुदाय से व्यापक सहमति मिली। तब इस आन्दोलन को जल, जंगल और जमीन से भी जोड़कर देखा जाता था। लेकिन यह नक्सलवाद के लिए संक्रमण काल भी रहा क्योंकि इसकी नीतियां व सोच में जबर्दस्त दोहरापन दिखने लगा था।

राज्य सरकारों ने नक्सलियों के प्रति नरमीयत छोड़कर सशस्त्रों बलों को इनसे लोहा लेने के लिए जंगलों में भेजा। चूँकि, नक्सली गुरिल्ला युद्ध में माहिर होते हैं, इन्हें जंगल के चप्पे–चप्पे का पता होता है, इसलिए छत्तीसगढ़, झारखण्ड व उड़ीसा के जंगलों में वे घात लगाकर सशस्त्र बलों को

निशाना बनाने लगे। 25 मई, 2013 को छत्तीसगढ़ में सुकमा जिले के जंगल में कांग्रेस पार्टी के काफिले पर हुआ नक्सली हमला यह बताता है कि अब माओवादियों की लड़ाई तीसरे चरण में पहुँच गई है। बड़ी तादाद में एकजुट होकर एक बड़ी सियासी पार्टी की रैली से लौट रहे नेताओं पर हमले का यह पहला मामला है। इससे पहले जो भी नेता नक्सली हिंसा के शिकार हुए, वे या तो अकेले होते थे या अपने अंगरक्षकों के साथ। लेकिन यह पहली बार दिखा है कि कई बड़े नेताओं के काफिले पर हमले किए गए। जाहिर है, अब नक्सलियों के निशाने पर नीति–नियंता, राजनीतिक नेतष्त्व व राजनीतिक पार्टियां हैं।[41]

यह कहना कि नक्सलवाद कानून–व्यवस्था की समस्या नहीं बल्कि विकास से जुड़ी समस्या ही है, एकदम गलत है। नक्सलियों के प्रति नरम सोच रखने वाले तबकों को अपने विचारों पर पुनरावलोकन करना चाहिए। कुछ वक्त पहले ही सीपीआई (माओ) की दंडकारण्य स्पेशल जोनल कमेटी ने एक सार्वजनिक बयान दिया था, जिससे स्पश्ट होता है कि इनका लोकतन्त्र व वर्तमान व्यवस्था पर कोई भरोसा नहीं है। इसलिए वह इन्हें उखाड़ फेंकना चाहते हैं। उनका मानना है कि लोकतंत्र एक बहाना है, जिसके जरिये कॉरपोरेट सेक्टर–सरकारी तंत्र–राजनेता जनता का शोशण करते हैं। इसलिए यह मानकर चलना कि बात से ही बात बनेगी, ऐसा सही जान नहीं पड़ता, क्योंकि नक्सल अवधारणा सामाजिक व आर्थिक न्याय की मांग करती है और हमारी व्यवस्था यह दे नहीं सकती है।

नक्सलियों को आदिवासी समुदायों और स्थानीय लोगों का समर्थन है, इसलिए वे आसानी से हमला करते हैं और फिर छिप जाते हैं। ऐसे में, अगर सुरक्षा बलों को स्पश्ट दिशा–निर्देश न हो, इन्हें राज्य पुलिस से मदद न मिले और इनके पास उचित संसाधन नहीं हों, तो नक्सलियों के खिलाफ ऑपरेशन को अंजाम देना तो दूर की बात, अपनी जान बचानी भी मुश्किल है। भारत के नक्शे पर लाल गलियारा बढ़ता जा रहा है। इससे यह साबित होता है कि नक्सल अपने गढ़ में मजबूत होते जा रहे हैं। ऐसे में, इन क्षेत्रों में इनकी समानांतर सरकार बनने से रोकने के लिए केन्द्र और राज्यों को मिलकर विकास–कार्यों को बढ़ावा देना होगा। जमीनी स्तर पर सुशासन की बुनियाद खड़ी करनी होगी। साथ ही सुरक्षा बलों को अत्याधुनिक सुविधाओं से लैसकर व्यवस्थागत ढांचे को मजबूत बनाना होगा। इससे भी बढ़कर परस्पर आरोप–प्रत्यारोप से बचना होगा।[42]

समीक्षाः–

नक्सलियों के बुलन्द हौसलों और लक्ष्य को देखते हुए केन्द्र और राज्यों को सतर्कता से काम करना होगा। छत्तीसगढ़ के दन्तेवाड़ा और बिहार के जहानाबाद में जेलों पर हमले करके अपने साथियों को छुड़ाने वाले नक्सलियों ने फरवरी 2009 में उड़ीसा के नयागढ़ में शस्त्रागार और पुलिस थाने पर जिस रणनीति से हमला किया उससे उनकी क्षमता और दक्षता जाहिर होती है। अब उनके हाथ में साधारण बंदूकें नहीं, बल्कि एके– 47 राइफलें नजर आने लगी हैं। पुलिस थानों और जेलों को शोशण और अत्याचार के ठिकाने बताने वाले नक्सली गरीबों का विश्वास जीतने की कोशिश कर रहे हैं और वे इसमें सफल भी हो रहे हैं। इसलिए नक्सलियों से केवल बंदूक से नहीं निपटा जा सकता। उनसे बातचीत तो की ही जानी चाहिए, लेकिन हिंसा रोकने के लिए सख्ती भी आवश्यक है। सभी राज्य सरकारों को समय रहते नक्सलियों का आधार खत्म करने पर ध्यान देना होगा, वरना नक्सलियों की समानान्तर सत्ता संवैधानिक सरकारों को बेमानी कर देगी। माओवादी खतरे को कम

करके आंकना एक गंभीर चूक होगी। अब कदम उठाने का समय आ गया है क्योंकि अब और देरी देश की सुरक्षा व्यवस्था को संकट में डाल देगी। इसके लिए केन्द्र व राज्य को समन्वित रूप से इससे निपटने हेतु कमर कसनी होगी।

नक्सली समस्या के हल के लिये केन्द्रीय स्तर पर संयुक्त कमान गठित करने प्रभावित राज्यों की साझा नीति बनाने तथा विकास कार्यों को गति देने के साथ ही साथ राज्यों की पुलिस व्यवस्था को नक्सलियों से निपटने के काबिल बनाना बहुत जरूरी है अन्यथा खुफिया तन्त्र की कमजोरी या पुलिस की चूक जैसे तर्कों के चलते नक्सली हिंसा न केवल कायम रहेगी बल्कि इसमें इजाफा भी होता रहेगा। अनुभव यह बताता है कि नक्सलियों से मुकाबला करने में उनके खिलाफ जनमत तैयार करने की रणनीति उपयोगी हो सकती है। केवल सुरक्षा बलों के सहारे इस समस्या से निपटना सम्भव नहीं है। केन्द्र से इसे राश्ट्रीय समस्या मानकर अगुआई करने की गुहार लगाने की बजाय विकास, जनमत और दक्ष पुलिस व्यवस्था की मिली–जुली रणनीति बनाने की दिशा में राज्य सरकारों को काम करना चाहिए। पुलिस का संरक्षण उनके मनोबल को बढ़ाता है, तो उसका अनावश्यक बचाव उनके निकम्मेपन को प्रोत्साहित करता है। देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरा बने नक्सली अब देश के कुछ उन भागों में अपनी गतिविधियों को विस्तारित करने की कोशिश में लगे हैं जहाँ पहले उनका प्रभाव नहीं रहा। गष्ह मन्त्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार नक्सली अब कर्नाटक, केरल और उत्तराखण्ड में अपनी गतिविधियों तथा प्रभाव को विस्तारित करने की कोशिश में हैं, जबकि इन राज्यों के कुछ भाग पहले ही उनकी गतिविधियों से प्रभावित हैं। रिपोर्ट के अनुसार नक्सली अब सामाजिक स्तर पर भी अपनी गतिविधियों को तेज करने में लगे हैं। रिपोर्ट के अनुसार नक्सली देश और त्वरित अंदाज में न्याय देने के लिए जन अदालतों का आयोजन करते हैं। इससे वे सरकारी व्यवस्था के खिलाफ काम करते हैं और ग्रामीण इलाकों में दादागीरी जमाए रखने में भी उन्हें इस अभियान से मदद मिलती है।

नक्सलवाद अपने आप में कोई राजनीतिक समस्या ही नहीं है और न ही यह कोई दीर्घकालिक आर्थिक समस्या है। आज नक्सलवाद का मूल समर्थन आदिवासी इलाकों में है, जहाँ उनकी कुछ गम्भीर समस्याएं हैं। हालांकि सरकार भी आजकल आदिवासियों की आवाज सुनने लगी है। जिन आदिवासी इलाकों में सरकार की ओर से बड़े स्तर पर काम किए गए, वहाँ पर हिंसा ज्यादा दिनों तक नहीं चल पाई। आन्ध्र प्रदेश ऐसा राज्य है, जहाँ आजादी के पहले ही नक्सल समस्या थी। यहाँ पुलिस और जनता के तालमेल से नक्सल समस्या को सुलझाया गया। आन्ध्र में जनता के बीच कई कार्यक्रम चलाए गए थे। इसमें एम्बुलेंस जैसी सुविधा महत्त्वपूर्ण रही। इसका लाभ समस्याग्रस्त इलाकों में लोगों को खूब मिला और स्थानीय समस्याओं में भी काफी सुधार हुआ। इसीलिए मैं कह सकता हूँ कि नक्सली समस्या का समाधान राजनीतिक नहीं है, इस समस्या का समाधान गुड गवर्नेन्स ही कर सकती है।

सन्दर्भः–

1 नक्सलवाद : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक विश्वास (सम्पादन– डॉ. मुकेश कुमार तिवारी एवं अन्य), आशा पब्लिशिंग कम्पनी, आगरा– 2013, पष्ठ– 22–23

2 प्रतिमा चतुर्वेदी, 'नक्सलवाद : आतंक या आन्दोलन', वाईकिंग बुक्स, जयपुर– 2011,

पृष्ठ– 14
3 उपरोक्त, पृष्ठ– 12
4 उपरोक्त, पृष्ठ– 12, 13
5 रमन दीक्षित, 'नक्सलाइट मूवमेन्ट इन इण्डिया : द स्टेट रिस्पान्स, जर्नल ऑफ डिफेन्स स्टडीज, वाल्यूम– 4, नं.– 2, अप्रैल, 2010, पृष्ठ– 32
6 प्रतिमा चतुर्वेदी, 'नक्सलवाद : आतंक या आन्दोलन', वाईकिंग बुक्स, जयपुर– 2011, पृष्ठ– 13
7 उपरोक्त, पष्ठ– 14
8 मोहित सेन, 'नक्सलाइट्स एण्ड नक्सलिज्म, इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली (ई.पी. डब्ल्यू.), वाल्यूम नं. – 13, जनवरी, 2011
9 इकोनॉमिक टाइम्स– 6 फरवरी, 2010, पृष्ठ – 4
10 बृजेन्द्र कुमार पाण्डेय, 'नक्सलवाद : ऐतिहासिक पष्ठभूमि एवं सामाजिक विश्वास', विश्वभारती पब्लिकेशन, नई दिल्ली– 2012, पष्ठ– 119
11 एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', के.डब्ल्यू. पब्लिशर्स, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ– 154
12 अभय कुमार सिंह एवं गुलाब चन्द्र ललित, 'नक्सलवाद : आन्तरिक सुरक्षा को चुनौती', प्रतियोगिता दर्पण, जून– 2010
13 स्व आलेख, 'आन्तरिक सुरक्षा की रीढ़ तोड़ता नक्सलवाद', (सम्पादित पुस्तक द्वारा संजय कुमार – भारत की आन्तरिक सुरक्षा : मुद्दे और चुनौतियाँ, सनराइज पब्लिकेशन, नई दिल्ली– 2010)
14 एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', के.डब्ल्यू. पब्लिशर्स, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ– 64
15 उपरोक्त, पृष्ठ– 3
16 उपरोक्त, पृष्ठ– 19
17 राहुल पंडिता, 'सलाम बस्तर', ट्रैंकेबार प्रेस, चेन्नई– 2010, पृष्ठ–15
18 उपरोक्त, पृष्ठ– 16
19 एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', के.डब्ल्यू. पब्लिशर्स, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ– 2
20 उपरोक्त, पृष्ठ– 27
21 उपरोक्त, पृष्ठ– 3, 27
22 अरविन्द पाण्डेय एवं डॉ. गुलाब चन्द्र ललित, 'आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था को ठेंगा दिखाता नक्सलवाद', सुरक्षा परिदृश्य (शोध जर्नल), अगस्त– 2010, पृष्ठ– 1
23 आकांक्षा मेहता, 'काउन्टरिंग इण्डियाज माओइस्ट इन्सरजेन्सी : द नीड फार स्ट्रेटजी

नाट आपरेशन्स', नक्सल वाच, 24 नवम्बर, 2010
24 एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', के.डब्ल्यू. पब्लिशर्स, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ– 41
25 उपरोक्त, पृष्ठ– 57
26 उपरोक्त, पृष्ठ– 57, 58
27 तरुण विजय, 'तन्त्र में गण की अनदेखी', दैनिक जागरण (सम्पादकीय पृष्ठ), 24 जनवरी, 2011
28 स्व आलेख, 'दिया है दर्द तो दवा भी देनी होगी' (सम्पादित पुस्तक– भारत की आन्तरिक सुरक्षा चुनौतियाँ द्वारा– डॉ. संजय कुमार), सनराइज पब्लिकेशन, नई दिल्ली– 2011, पृष्ठ– 102
29 उपरोक्त, पृष्ठ– 104
30 उपरोक्त, पृष्ठ– 103–104
31 मुकेश कुमार तिवारी एवं अन्य, 'नक्सलवाद : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक विकास', आशा पब्लिशिंग कम्पनी, आगरा– 2012, पृष्ठ– 70
32 प्रतिमा चतुर्वेदी, 'नक्सलवाद : आतंक या आन्दोलन', वाईकिंग बुक्स, जयपुर– 2011, पृष्ठ– 47
33 एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', के.डब्ल्यू. पब्लिशर्स, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ– 6–7
34 अभय कुमार सिंह, 'नक्सलवाद : आन्तरिक सुरक्षा को चुनौती', प्रतियोगिता दर्पण, जून – 2010
35 प्रकाश सिंह, 'द नक्सलाइट मूवमेन्ट इन इण्डिया', रुपा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली– 2009, पृष्ठ– 207
36 पी.वी. रमन्ना के विचार – इण्डियन एक्सप्रेस, 13 जुलाई, 2011, पृष्ठ– 9
37 पुश्कर महाजन, 'इन्टरनल सिक्योरिटी थ्रेट्स : इश्यूज एण्ड आप्शन', शिवम पब्लिकेशन, पटना– 2011, पृष्ठ– 134
38 एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', के.डब्ल्यू. पब्लिशर्स, प्रा.लि., दरियागंज, नई दिल्ली– 2010, पृष्ठ– 3
39 उपरोक्त, पृष्ठ– 3, 4
40 उपरोक्त, पृष्ठ– 4, 5
41 शिवेन्दु सिवाच, 'नक्सल या नक्सली आतंक', जनसत्ता, 21 मई, 2009 एवं डॉ. एस.के. मिश्रा, 'नक्सलवाद', 2010, पृष्ठ– 4
42 रमेश शर्मा, 'बस्तर में चलती है जनताना सरकार', (हस्तक्षेप– 2), राष्ट्रीय सहारा– 1 जून, 2013